‘तार सप्तक’: आयोजन, अमल और आगे

सार संक्षेप: ‘तार सप्तक’ का प्रकाशन छायावाद के बाद की हिंदी कविता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। कई लोग इसे युगांतरकारी घटना भी मानते है। इस प्रकाशन की परिकल्पना और स्वरूप आरंभ में मध्य प्रदेश में उज्जैन और शुजालपुर से संबंधित कवियों के मन में उभरा था। किंतु एक बार जब संपादक के बतौर अज्ञेय का नाम स्वीकार कर लिया गया तो योजना का गुरुत्व केंद्र दिल्ली चला आया। योजना में सात कवि थे और सातों अपने हिस्से का संपादक प्रकाशक भी खुद ही थे, किंतु एक सुपर संपादक के रूप में अज्ञेय ने जो ख्याति अर्जित की वह उनके बाद के साहित्यिक नेतृत्व के लिए प्राणभूमि का कार्य किया। ‘प्रतीक’ के माध्यम से एक खास ढंग की अहंकेंद्रित कविता को उन्होंने आगे बढ़ाया।

बीज शब्द : द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, प्रप्रयोगवाद, सहोद्योगी योजना, अंतर्विरोध पूर्ण, मूल्यानिवेशित, सौंदर्यात्मक अभिरुचि, भावबोध

मुक्तिबोध के पहले काव्य संग्रह 'चांद का मुंह टेढ़ा है' की भूमिका लिखते हुए शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है- 'शुजालपुर और उज्जैन ने सबसे मूल्यवान चीज जो हिन्दी को दी वह 'तार-सप्तक' है’ 1। इसका प्रकाशन वैसे तो सन् 43 में हुआ, किंतु इसकी भूमिका दो-तीन साल पहले सन् 40 से ही बनने लगी थी। इसी साल मुक्तिबोध उज्जैन से शुजालपुर आकर शारदा शिक्षा सदन में अध्यापक हो गये थे। उज्जैन में वे प्रभाकर मामले से कुछ इस तौर से जुड़े हुए थे कि संध्याएं लम्बी-लम्बी तार्किक बहसों में बीती थीं।6 बहरहाल शिक्षा सदन में आने के बाद भी मुक्तिबोध बौद्धिक उहापोह में जीते रहे, क्योंकि शिक्षा सदन के हेडमास्टर डां. नारायण विष्णु जोशी भी बौद्धिक तौर पर सक्रिय थे, 'यद्यपि समस्याओं के राजनीतिक समाधानों के बारे में वे एकमत नहीं थे।‘2 सन् 41 में नेमिचन्द्र जैन जब शुजालपुर पहुंचे तो वातावरण में गुणात्मक परिवर्तन आया। वे प्रकाशचंद्र गुप्त की शोहबत में एक तरह से मार्क्सवाद में दीक्षित और ट्रेंड हो गये थे। इस तरह इन बौद्धिकों से उज्जैन से आकर जब कभी-कभी डां. माचवे भी जुड़ जाते तो समय जैसे थम सा जाता। इस तरह, 'धीरे-धीरे शुजालपुर के बौद्धिक वातावरण पर मार्क्सवाद छा गया'3। गांधीवादी डां. जोशी ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की सारी स्थापनाएं अब स्वीकार कर ली थी। मुक्तिबोध भी उहापोह से निकल जोशी और नेमीचंद के साथ हो लिए थे। एक केवल माचवे आत्मनिष्ठ आदर्शवादी लाइन से चिपके रहे, किंतु इन सब के रचनात्मक कार्यों के सहभागी भी रहे। अब 'शाम को विद्वतापूर्ण भाषण होते। स्त्रियों की भी क्लासें लगती।‘4 इस बौद्धिक-रचनात्मक वातावरण में 'तार सप्तक' जैसा आइडिया कौंध ही सकता था, सो वह कौंधा। ‘इसकी मूल परिकल्पना प्रभाकर माचवे और नेमीचन्द्र जैन की थी। नाम 'तार-सप्तक' प्रभाकर मामले का सुझाया हुआ था।‘5 तब तक भारत भूषण अग्रवाल भी मुक्तिबोध के संपर्क में आ चुके थे, क्योंकि वे नेमीचन्द्र जैन के मित्र थे और मार्क्सवादी भी। आरंभ में जिन कवियों को सम्मिलित करने की योजना थी उसमें मध्यम प्रदेश के दो कवि प्रभागचन्द्र शर्मा और वीरेन्द्रकुमार जैन भी शामिल थे। और हां, अज्ञेय भी। बकौल शमशेर-

'अज्ञेयजी से संपर्क बढ़ने पर योजना को कार्य-रूप में सम्पन्न करने के लिए उसमें संपादक का भार उनपर डाल दिया गया। नेमिचन्द जैन और भारतभूषण अग्रवाल जब कलकत्ते में थे, योजना ने अंतिम रूप लिया। अज्ञेयजी ने डां. रामविलास शर्मा और गिरिजा कुमार माथुर के नाम सुझाये। सात की सीमा निर्धारित होने के कारण नामावली में परिवर्तन अनिवार्य था।'6 यानी कि मध्य प्रदेश के दो कवि योजना से बाहर कर दिये गये। सप्तक सन् 43 में छपा और जब लोगों तक पहुंचा तो ऐसा लगा कि सारे कवि आत्म परिचय, अपनी भूमिकाएं और यहाँ तक कि अपने हिस्से का संपादन लेकर खुद ही हाजिर हैं। इस तरह अज्ञेय एक compiler से ज्यादा कुछ भी नहीं दिखते। उन्होंने 'विवृति और पुनरावृति' शीर्षक एक भूमिका अवश्य लिखी और योजना भूमि को मध्यम प्रदेश से उठाकर सीधे दिल्ली स्थापित कर दिया। उनके शब्द हैं-"दो वर्ष हुए, जब दिल्ली में 'अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन' की आयोजना की गयी थी। उस समय कुछ उत्साही बन्धुओं ने विचार किया कि छोटे-छोटे फुटकर संग्रह छापने की बजाय एक संयुक्त संग्रह छापा जाये"...7 आदि। अभी योजना अज्ञेय के पास पहुंची नहीं है , हां उत्साही बन्धुओं तक उनकी 'योजना-विश्वासी' वाली ख्याती अलबत्ता पहले से ही पहुंची हुई है। यह ख्याती ही योजना को उन तक खींच ले जाती हैं और अपने नाम के अनुरूप वे स्वीकार भी कर लेते हैं। बहरहाल, योजना भूमि या केंद्र के बदलने से और बदलकर एक सम्मेलन की तात्कालिकता से बांध देने से- जिससे 'उत्साही बन्धु' भी वैसे ही बंधे हैं जैसे कि 'योजना-विश्वासी' अज्ञेय- चीजें अज्ञेय के बेहद करीब आ गयी हैं। उन्होंने वर्षों की कसरत और सपने को एक छोटी सी प्रस्तुति और स्वीकृति में समेटकर रख दिया है। इन क्षणों में उनकी भूमिका निर्णायक दीखती है, हालांकि पूरे प्रकरण में वह वैसी है नहीं। इसके बावजूद पूरे प्रकरण या प्रकाशन इतिहास को उन्हें रखना पड़ता है। अज्ञेय ने यहां अपनी नपी-तुली भाषा में अपनी निस्संगता और विशेषज्ञता का अद्भुत प्रदर्शन करते हुए लिखा है- 'आरंभ में योजना का क्या रूप था, और किन-किन कवियों की बात उस समय सोची गयी थी, यह अब प्रसंग की बात नहीं रही।'8 ठीक है, नहीं रहीं, किंतु यह हमेशा प्रासंगिक रहेगा कि अज्ञेय आरंभ में इस योजना में शामिल नहीं थे और व्यवहारिक कारणों से उन्हें इस में शामिल किया। आगे अज्ञेय ने योजना के आर्थिक और प्रबंधन पहलू की चर्चा करते हुए लिखा है- '... यह सिद्धांत रूप से मान लिया गया था कि योजना का मूल आधार सहयोग होगा, अर्थात उस में भाग लेने वाला प्रत्येक कवि पुस्तक का साक्षी होगा। चन्दा करके इतना धन उगाहा जायेगा कि कागज का मूल्य चुकाया जा सके, छपाई के लिए किसी प्रेस का सहयोग मांगा जायेगा जो बिक्री की प्रतीक्षा करें या चुकाई में छपी हुई प्रतियां ले ले।'9 यहां तक अज्ञेय निस्संग हैं, एक तरह से उन्होंने केवल तथ्य कथन किया किंतु आगे का लेखन न सिर्फ मूल्यावेशित है, बल्कि रणनीतिक भी है जो आगे की देखता है। अज्ञेय इसे 'दूसरा मूल सिद्धांत' नाम देते हुए लिखते हैं- 'दूसरा मूल सिद्धांत यह था कि संग्रहित कवि सभी ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं- जो यह दावा नहीं करते कि काव्य सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।'10 अज्ञेय ने इस 'दूसरे मूल सिद्धांत' को एकदम ही flexible बनाकर पेश किया है, इतना नमनीय कि इसे लेकर शायद ही कोई एतराज़ कर सके। किंतु बातों-बात में यहां न सिर्फ एक खास ज्ञान-मीमांसा रख दी जाती है जो संशयवाद के करीब है बल्कि कार्य प्रक्रिया को भी एक खास तरह दे दी जाती है। बहरहाल, इन संकल्पों और कठिनाइयों के साथ 'संग्रह को व्यावहारिक रूप देने का दायित्व अज्ञेय 'के सिर पर डाल दिया जाता है। इसके बाद ही "'तार सप्तक' का वास्तविक इतिहास"11शुरू होता है। वास्तविक इतिहास यानी रचनाएं इकत्र करने वाली परेशानियों, चंदा उगाही की झंझटों और कई सांयोगिक अड़चनों-रूकावटों आदि से शुरू हुआ इतिहास। इससे पहले तक अभियोजना को आकार देने के क्रम में अज्ञेय समेत सारे रचनाकार कार्यकर्त्ता भी थे और नेतृत्व प्रदाता भी। किंतु वास्तविक इतिहास के आरंभ के साथ ही कार्यकर्त्ता पीछे छूटने लग जाते हैं क्योंकि उन सब पर सुपर संपादक

के बतौर अज्ञेय का एकल नेतृत्व हावी हो जाता है। इसी के साथ काव्य सत्य का 'अन्वेषण' जो कि रचना प्रक्रिया का सामान्य धर्म है, संपादक की दृष्टि में 'प्रयोग' बन जाता है। 'तार सप्तक' के अपने उद्देश्य में सफल रहने के कारण और उससे भी ज्यादा उसके यशस्वी संपादक द्वारा साहित्यिक पत्रिका 'प्रतीक' के माध्यम से एक साहित्यिक समूह को नेतृत्व देने की वजह से यह 'प्रयोग' ही आहिस्ता-आहिस्ता प्रयोगवाद में तब्दील हो जाता है। सचाई यह है कि इस वाद को अज्ञेय-समूह के लेखकों-कवियों से ज्यादा उनके विरोधियों द्वारा हवा दी जाती है।

'तार सप्तक' एक साहित्यिक आयोजन था और एक प्रकाशन भी। आयोजन में अज्ञेय जोड़े गये थे, उसके कर्ता अन्य लोंग था। बेशक प्रकाशन में अज्ञेय की भूमिका अहम थी, किंतु आयोजन अभी और भी अहम था, इसीलिए भूमिका ('विवृति और पुनरावृत्ति') में उन्हें लिखना पड़ा था- 'इस सहोद्योगी योजना में तार सप्तक के लेखक ही उसके प्रकाशक और सम्पादक भी हैं12'। छह वर्ष बाद यानी कि सन् 49 में जब 'दूसरा सप्तक' की परियोजना बनी तो अज्ञेय आयोजक भी थे और संपादक भी। पिछले प्रकाशन अनुभव ने उन्हें प्रकाशक भी मुहैया कर दिया था। सो इस बार भूमिका लेखन के वक्त उनका confident level बुलंदियां छू रहा होता है। यहाँ तक कि 'तार सप्तक के आयोजन पर भी संपादक की ओर से वे नयी रोशनी डालते हुए लिखा- 'तो 'तार सप्तक' के कवि ऐसे कवि थे, जिनके बारे में कम से कम संपादक की यह धारणा थी कि उन में कुछ है, और वे पाठक के सामने लाये जाने के पात्र हैं, यद्यपि वे हैं 'नये' ही, केवल 'कवियश:प्राथी' ही और इसलिए काव्यक्षेत्र के अन्वेषी ही।'13 कवि नया हो या स्थापित उसे और कुछ नहीं तो अपने लिए रचना क्षणों में माध्यम को तो इन्वेंट करना ही पड़ता है। सवाल है कि कि काव्य क्षेत्र के अन्वेषण से अज्ञेय का मुराद क्या है। बगैर रचनात्मक अन्वेषण के अपने लिए काव्य क्षेत्र में जगह बनाना संभव है क्या। क्या काव्य क्षेत्र में ऐसा कवि भी हो सकता है जो अन्वेषी न हो। अज्ञेय की काव्य क्षेत्र के अन्वेषण की अवधारणा नये कवियों से जुड़कर एक ओर जहां एक अभ्युक्ति का रूप लेती है वहीं दूसरी ओर ऐसे सवालों से रूबरू भी कराती है। किंतु 'तार सप्तक' संग्रहित कवि इन सवालों से ज्यादा इस बात को लेकर उत्तेजित थे कि उन्हें compiler जैसे संपादक ने खुद को संपादक घोषित करके उन्हें न सिर्फ उनके पोजिशन से महरूम किया बल्कि उन्हें अभ्यर्थी-नुमा कोई चीज बनाकर भी रख दिया। कहां वे अपना संपादक प्रकाशक और भूमिका लेखक तक खुद थे, कहाँ अब वे एक सुपर संपादक की धारण तले दबा से दिये गये। सवाल है, जैसी योजना थी उसमें सुपर संपादक को यह देखने का क्षेत्राधिकार ही कहाँ था कि संग्रहित कवियों में 'कछ' है कि नहीं। सचाई तो यह है कि खुद कवियों ने संपादक को चुना और आगे लाया था, मगर अब सुपर संपादक महोदय संकेत दे रहे थे कि संग्रहित कवियों में चूंकि 'कुछ' था और वे पाठक के सामन लाये जाने के योग्य थे इसलिए 'तार सप्तक' के माध्यम से वे आगे लाये गये। जब अन्य कवि अभ्यर्थी की पंक्ति में खड़ा कर दिये गये तो उनकी योग्यता परखने और उन्हें सामने लाने वाला सुपर संपादक के अलावा और कौन हो सकता था। बात हालांकि घुमाकर और वाक्-चातुर्य के साथ कही गयी थी, किंतु संबंधित कवियों ने इसे पकड़ा और दूसरे संस्करण के आत्म कथ्य में अपनी तीव्र प्रतिक्रियाएं भी दीं। ध्यातव्य है कि 'दूसरा सप्तक'(सन् 1949) की भूमिका में अज्ञेय ने स्वयं पर प्रयोगवाद के प्रवर्तक होने के लगे ठप्पे को तो नकारा ही नकारा था किसी मतवाद से जुड़ने को पूर्वग्रह का शिकार होना भी बतलाया था। इसका आशय यह था कि कवि 'अपने कृतित्व के आधार पर ही परखे जायें'14। बहरहाल, 'तार सप्तक' के दूसरे संस्करण (सन् 1963) के आत्म कथ्य 'पुनश्च' में नेमिचन्द्र जैन ने अपनी और साथी कवियों की स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा- " 'तार सप्तक' के सम्पादक महोदय का हाथ उसके प्रकाशन में चाहे जितना रहा हो, पर उसकी परिकल्पना उन की नहीं थी और न ही उस में संग्रहीत कवि ही मूलत: उन की पसंद के कारण एकत्र हुए थे'। बाद के सप्तकों के पीछे चूंकि सम्पादक की साहित्य और काव्य – सम्बन्धी मान्यताओं की प्रेरणा और अभिव्यक्ति

थी, इस कारण सन् 50 के बाद वे खुद गुटबंदी और संकीर्णता की अभिव्यक्ति भी बन गये। 'तार सप्तक' के एक अन्य कवि गिरिजा कुमार माथुर ने भी 'तार सप्तक' के सम्पादक द्वारा 'प्रयोगवादिता जैसी किसी चीज के समारंभ की अवधारणा को नकारते हुए संग्रहीत कवियों के नये भाव-बोध को युग-यथार्थ से जोड़ा और ऐसे आलोचकों की खबर ली "जिन्होंने संकलन कर्म को 'नेतृत्व' भी समझ लिया था"15। मुक्तिबोध ने आधारविहिन व्यक्ति-स्वातंत्र्य की उस अवधारणा पर चोट की जिसे अज्ञेय संग्रहीत कवियों के बीच की मतैक्यविहिनता और असंवाद से व्यंजित करना चाहते थे। इसके पीछे यह ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि काम कर रही थी। डां. रामविलास शर्मा ने खुद को प्रगतिशील भावधारा का हिस्सा बताकर किसी भी तरह के प्रयोगवाद से किनाराकशी कर ली।

मुक्तिबोध ने 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के बाद एक निबंध लिखा है जिसका शीर्षक है 'प्रयोगवाद'। अब तक प्रयोगवाद एक साहित्यिक प्रवृति के रूप में स्थापित हो चुका है। मुक्तिबोध ने इसे छायावाद के बाद की बदली हुई सामाजिक परिस्थिति में उत्पन्न नये भावबोध से जोड़कर देखा है जो अक्सर बौद्धिक – व्यक्तिवादी रचनात्मक प्रतिक्रिया बतौर सामने आती है। किंतु समाज की सौंदर्यात्मक अभिरुचि अभी छायावादी ही है। 'यह स्वाभाविक ही था कि इस खेमे के कुछ लोग आगे चलकर मार्क्सवादी होते'16 क्योंकि समाज से सामंजस्य के अभाव में जो एक बौद्धिक व्यक्तिवाद का विकास हुआ था उसके फलस्वरूप 'चेतना अधिक यथार्थोन्मुख हुई, चाहे वह अंतर्मुखी हो या बहिर्मुखी'। और कोई पहुँचा हो या न पहुंचा हो, स्वयं मुक्तिबोध इसी रास्ते से मार्क्सवाद तक पहुँचे थे। उन्होंने सन् 56 में एक निबंध लिखा था- 'नयी कविता और आधुनिक भावबोध'। यह निबंध न सिर्फ प्रयोगवाद और नयी कविता के विकास को बल्कि उनसे मुक्तिबोध के अंतर्विरोधपूर्ण संबंध को समझने में सहायक है। 'पश्चिमी जगत में प्रचलित सभ्यता – समीक्षा की विशेषता यह है कि उका अभाव है। कहा गया है कि मानव स्वभावत: क्षुद्र है, तुच्छ है, वह स्वभावत: स्वार्थ प्रेरित है'17। तात्पर्य यह कि उसका उदात्त रूप एक धोखा या छलावा है। अत्एव बेहतर समाज और मनुष्य का निर्माण भी धोखा है। क्षुद्रता और दु:ख से उबरने का कोई उपाय नहीं। ऐसी संवेदना के सबसे बड़े कवि है कृति संपादक श्रीकांत वर्मा। 'इसी प्रकार यह कहा गया है कि वर्तमान सभ्यता औद्योगिक सभ्यता है.. जिसमें मनुष्य सिर्फ एक पूर्जा है'18। समाजवादी और पूंजीवादी दुनियां – दोनों के दोनों व्यक्तित्व का हनन करते हैं। पूंजीवादी दुनिया में व्यक्ति को केवल चिखने चिल्लाने का अधिकार है, समाजवादी दुनिया में तानाशाही है जो व्यक्तित्व को खुलने नहीं देती। विजयदेव नारायण साही और रघुवीर सहाय जैसे कवि इस अभिप्रेरणा से ही संचालित हैं। एक तीसरा स्कूल है जिसमें 'व्यक्ति अपनी अद्वितीयता की रक्षा चाहता है, सृजनशील होना चाहता है, वह समाज में अपने को खो न दे, भीड़ का अंग न बने, जनता में विलीन न हो जाये'19। इस स्कूल के पुरोधा कवि 'प्रतीक' के संपादक अज्ञेय हैं। इस स्कूल से ही निकलकर कवि जगदीश गुप्त ने 'नयी कविता' निकाली है। कविता और कवियों के ये सारे सम्प्रदाय 'दूसरा सप्तक' और 'प्रतीक' के प्रकाशन के साथ या बाद के हैं। रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है- "प्रयोगवाद की शुरुआत 'तार सप्तक' से नहीं, उसकी शुरूआत होती है सन् 47 में 'प्रतीक' से"20।

संक्षिप्त संदर्भ सूची:

(1) चाँद का मुँह टेढ़ा है, भूमिका, शमशेरबहादुर सिंह, राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली, सप्तम संस्करण 1981, पृ. सं 15, (2) उपर्युक्त पृ. सं 14, (3) उपर्युक्त, (4) उपर्युक्त, (5) उपर्युक्त पृ. सं 15, (6) उपर्युक्त, (7) तार सप्तक, प्रथम संस्करण की भूमिका, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पंचम संस्करण 1981, पृ. सं 10, (8) उपर्युक्त

पृ. सं 10, (9) उपर्युक्त, (10) उपर्युक्त पृ. सं 11, (11) उपर्युक्त, (12) पृ. सं 13, (13) दूसरा सप्तक, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, दूसरा पेपर बैक संस्करण, पृ. सं 5,(14) उपर्युक्त पृ. सं 6, (15) तार सप्तक, गिरिजाकुमार माथुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पंचम संस्करण 1981 पृ. सं 159, (16) नयी कविता का आत्मसंघर्ष, मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983, पृ. सं 95, (17) उपर्युक्त पृ. सं 119-20, (18) उपर्युक्त पृ. सं 120, (19) उपर्युक्त, (20)नई कविता और अस्तित्ववाद, डा. रामविलास शर्मा प्रथम संस्करण, तृतीय आवृत्ति 2003, पृ. सं 30-31